स्वामी दयानन्द सरस्वती की शैक्षिक विचारधारा

दिनेश कुमार गुप्ता*

भारतीय संस्कृति में ज्ञान के प्रकाश स्तंभ के रूप में अवतीर्ण होने वाले महापुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती की हार्दिक अभिलाषा थी कि वैदिक सूत्रों का वर्तमान जीवन की समस्याओं से संबंध स्थापित हो जाए। इसके लिए शिक्षा में उन्होंने सकारात्मक कार्यक्रम की झलक देखी और जन-जन में शैक्षिक चेतना का होना आवश्यक माना। उनका विश्वास था कि शिक्षा एक ऐसा शक्तिशाली शास्त्र है, जिसके द्वारा हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों को अधिक प्रभावशाली ढंग से समाप्त करना संभव है, अत: सुधार आंदोलन में शिक्षा को समाज में पुनरुत्थान का प्रभावशाली अंग बनाया गया। स्वामी जी की सबसे बड़ी देन वर्ण, जाति, वर्गों में बंटे भारतीय समाज को संगठित करने तथा समाज में परिव्याप्त कुरीतियों, धार्मिक आडंबरों तथा विषमताओं को दूर कर समाज को सही रास्ते पर ले जाना तथा स्त्री तथा निम्न जाति के साथ हो रहे भेदभावों को दूर कर, उन्हें उचित सम्मान व शिक्षा देना रहा है। पुनरुत्थान के युग के नेताओं एवं समाज सुधारकों में दयानन्द जी का स्थान अति महत्वपूर्ण है।

पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय संस्कृति अपने पतन के कगार पर थी। भारतीय चेतना पूर्णरूपेण सुशुप्त थी और इस चेतना को सर्वदा के लिए सुशुप्त बनाए रखने का श्रेय तत्कालीन अंग्रेज़ शासकों को था जो भारतीय चेतना को जाग्रत न होने देने के लिए पूर्णरूप से कटिबद्ध थे। इसी समय एक तेजस्वी महापुरुष ने भारत में जन्म लिया जिसने अपनी प्रचंड विद्वता, गंभीर अध्ययन, अकाट्य तार्किकता व कठोर यथार्थवादी विचारधारा से सुशुप्त भारतीय आत्मा को झकझोरा, वह थे महर्षि दयानन्द, जिन्होंने पुरातन भारतीय संस्कृति को पुन: सम्मानित स्थान देने का, अपनी खोई हुई शक्ति पहचानने का तथा पलायनवादी दृष्टि के स्थान पर अभ्युदयवादी दृष्टि

* सब्ज़ी मंडी, ग्रा.पो.- मंडावरी, तहसील-लालसोट, ज़िला-दोसा, राजस्थान 303504

Chapter 8.indd 73 7/28/2017 2:48:52 PM

को अपनाने के लिए भारतीयों का आह्वान किया। इस महान शिक्षाविद् की भावनाएँ अपनी संस्कृति की रक्षा हेतु एक आंदोलन के रूप में प्रस्फुटित हो उठीं। ब्रह्म समाज के पश्चात् यह महत्वपूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन आर्य समाज के नाम से विख्यात हुआ। आर्य समाज की सुधार नीति पश्चिमी सभ्यता से भिन्न थी। स्वामी जी वेद, उपनिषद्, गीता आदि ग्रंथों को वास्तविक मानते थे। उन्होंने वैदिक युग की ओर पुनरावर्तन की स्पष्ट घोषणा की इसलिए भारत के मार्टिन लूथर कहलाए।

शिक्षा का अर्थ

स्वामी दयानन्द का विचार शिक्षा के प्रति आदर्शवादी था। वे शिक्षा को आत्मविकास का साधन मानते थे, उनके अनुसार, "जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता बढ़ती होवे, और अविद्या दोष छूटे, उसको शिक्षा कहते हैं। अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र, दुख में दुख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना विद्या है। अर्थात् जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध हो वह विद्या और जिससे तत्व स्वरूप न जान पड़े वह अविद्या कहलाती है।" (सिंह, ओ.पी., 2004, पृ. 158) स्वामी जी मानते थे कि विद्या के बिना मनुष्य को निश्चित ही दुख मिलता है, अत: धर्मार्थ मोक्ष के लिए विद्या अभ्यास करना चाहिए। स्वामी जी विशेष रूप से वैदिक शिक्षा के पक्षधर थे। उनका विचार था कि संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि, इन सब दानों में वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है। इसलिए जितना बन सके, उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि किया करें। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या व वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही देश सौभाग्यवान होता है।

स्वामी जी विद्या को बहुत अधिक महत्व देते थे उसे वे सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक मानते थे। विद्या धन सभी धनों में श्रेष्ठ है, क्योंकि अन्य धन व्यय से घटता है, जबकि विद्या व्यय से बढ़ती है। स्वामी जी के अनुसार, "वे माता-पिता धन्य हैं जो संतानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर व आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें। जिससे संतान मातृ, पितृ, पति, सास, ससुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और संतानादि से यथायोग्य धर्म का बर्ताव करें। इसको जितना व्यय करें उतना ही बढ़ता जाये, अन्य सब कोष व्यय से घट जाते हैं, इस कोष को कोई चुरा नहीं सकता।" (सिंह, ओ.पी., 2004, पृ. 158)

शिक्षा के लक्ष्य

स्वामी जी शिक्षा के द्वारा सर्वांगीण विकास चाहते थे। उन्होंने शिक्षा में शारीरिक, मानसिक, नैतिक सभी पक्षों को प्रधानता दी है। जहाँ जीवन की व्यावहारिकता हेतु मानव को तैयार करना चाहा, वहाँ उसे आत्म साक्षात्कार हेतु भी प्रेरित किया है। स्वामी जी के अनुसार, "जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को जीतकर विद्या अर्थात् ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।" (शर्मा, मणि, 2005, पृ. 145) इस प्रकार स्वामी जी ने शिक्षा के उद्देश्य में आत्मानुभूति के उद्देश्य को भी महत्व प्रदान किया।

तत्कालीन परिस्थितियों से संस्कृति की रक्षा हेतु स्वामी जी ने शिक्षा का उद्देश्य वैदिक धर्म तथा संस्कृति का पुनरुत्थान भी घोषित किया।

आत्मानुभूति

स्वामी दयानन्द ने प्राचीन ऋषियों की भाँति बताया कि शिक्षा का प्रथम उद्देश्य आत्मानुभूति है। आत्मानुभूति का अर्थ है— अपनी आत्मा को पहचानना। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए स्वामी जी ने बालक तथा बालिकाओं की अनिवार्य शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आत्मा के विषय में सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाए।

वैदिक धर्म तथा संस्कृति का पुनरुत्थान

स्वामी जी के युग में लोग पौराणिक हिन्दू धर्म में अविश्वास उत्पन्न हो जाने के कारण ईसाई धर्म को स्वीकार करते जा रहे थे। स्वामी दयानन्द ने लोगों को इस धर्म संकट से बचाने के लिए शिक्षा का उद्देश्य वैदिक धर्म तथा संस्कृति का पुनरुत्थान घोषित किया। उनका विश्वास था कि इस उद्देश्य के अनुसार शिक्षा देने से लोगों को अपने प्राचीन वैदिक धर्म तथा संस्कृति का ज्ञान हो जाएगा।

शारीरिक विकास

स्वामी जी मनुष्य का शारीरिक विकास करना शिक्षा का एक उद्देश्य मानते थे। इसके लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य पालन, व्यायाम, खेल-कूद और यौगिक क्रियाओं पर विशेष बल दिया है। उनके शब्दों में, "यदि बह्मचर्य का अच्छी तरह से पालन किया जाये, तो इससे शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा का बल बढ़ता है।" (सक्सेना व पांडेय, 2004, पृ. 338)

मानसिक विकास

स्वामी जी का मत था कि बालक को मानसिक दृष्टि से विकसित करने के लिए माता को पाँच वर्ष तथा पिता को आठ वर्ष की आयु तक घर पर ही शिक्षा देनी चाहिए। इसके पश्चात् बालक को पाठशाला भेज देना चाहिए।

नैतिक विकास

स्वामी दयानन्द का विश्वास था कि व्यक्ति सत्य का अनुसरण उसी समय कर सकेगा, जब उसका नैतिक विकास हो जाए। उनके शब्दों में, "हमारा उद्देश्य केवल यह है कि मानव जाति उन्नति करे तथा फले-फूले। मनुष्य इस बात का ज्ञान प्राप्त करे कि सत्य क्या है और असत्य क्या है? वे असत्य का त्याग करें तथा सत्य को स्वीकार करें।" (सक्सेना व पांडेय, 2004, पृ. 338)

आदर्श चरित्र का विकास

स्वामी जी बालक के चरित्र-निर्माण को शिक्षा का एक उद्देश्य मानते हैं। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि माता-पिता तथा गुरुजन सभी चरित्रवान हों तथा वे सभी अपने उच्च विचारों, आदर्शों तथा उपदेशों के द्वारा बालक के चारित्रिक विकास की ओर ध्यान दें।

समाज सुधार की शक्ति का विकास

दयानन्द जी ने मनुष्य के वैयक्तिक व सामाजिक दोनों विकास पर समान बल दिया है। उनके अनुसार, मनुष्य को अपने वैयक्तिक कल्याण के साथ-साथ समाज कल्याण के उद्देश्य को भी सामने रखना चाहिए। वे शिक्षा द्वारा मनुष्य में ऐसी शक्ति के विकास करने पर बल देते थे, जिससे वह समाज सुधार कर सके।

पाठ्यचर्या

स्वामी जी द्वारा निर्धारित शिक्षा योजना के अंतर्गत वेद एवं संबंधित संस्कृत साहित्य को सर्वोपरि माना गया है। उनका कथन है कि, "जो वेद पढ़ते हैं वे न्यायोचित कार्य करते हैं, योग का पालन करते हैं और इस भाँति ईश्वर को समझते हैं तथा मोक्ष द्वारा परमानंद की प्राप्ति करते हैं।" (शर्मा, मणि, 2005, पृ. 146) एक पत्र में उन्होंने लिखा है, "पाठशाला में संस्कृत का काम ठीक-ठाक होना चाहिए। जैसे मिशन स्कूलों में अपने अन्य स्वार्थ सिद्धि के लिए बाइबिल सुन लेते हैं, और कुछ ध्यान नहीं देते वैसे ही जो संस्कृत सुन ली तो क्या लाभ होगा? इस पाठशाला में संस्कृत मुख्य भाषा है उसकी ही वृद्धि होनी चाहिए। वरना फारसी का होना कुछ आवश्यक नहीं है। केवल संस्कृत और राजभाषा अंग्रेज़ी दोनों का ही पठन-पाठन होना आवश्यक है। जो आधे-आधे समय दोनों जारी रहें और दोनों की परीक्षा भी माहवार बड़ी सावधानी व दृढ़ नियम के साथ हुआ करें।" (सिंह, ओ.पी., 2004, पृ. 160)

स्वामी दयानन्द ने शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्न-लिखित विषयों को स्थान प्रदान किया, जिनका अध्ययन लगभग बीस वर्ष में समाप्त किया जा सकता है।

1. सर्वप्रथम बच्चों को पाणिनी के ध्वनि सिद्धांत का बोध कराते हुए शुद्ध उच्चारण कराना चाहिए।
2. ध्वनि सिद्धांत के पश्चात् बच्चों को पाणिनी तथा पतंजलि के व्याकरण संबंधी पाँच ग्रंथों का अध्ययन तीन वर्षों में पूर्ण कराना चाहिए।
3. व्याकरण सीखने के पश्चात्, बच्चों को आठ मास के भीतर यास्क के 'निघंटु' व 'निरूक्त' नामक ग्रंथों को अर्थ सहित छह से आठ मास में पढ़ाया जाना चाहिए।
4. तत्पश्चात् चार माह के अंतर्गत बच्चों को पिंगलाचार्य कृत 'छन्दोग्रंथ' का अध्ययन कराना चाहिए ताकि वे श्लोक बनाने की विधि सीख जाएँ।
5. इसके पश्चात् सुसंस्कृत बनने तथा बुराइयों से बचने के लिए छात्रों को मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण तथा विदुरनीति एवं महाभारत के चुने हुए अंशों का अध्ययन कराना चाहिए।
6. तत्पश्चात् बच्चों को छह शास्त्र 'पूर्व मीमांसा', 'वैशेषिक', 'न्याय', 'योग', 'साँख्य' एवं 'वेदान्त' व्याख्या सहित पढ़ाए जाने चाहिए। इनके साथ दस प्रमुख उपनिषदों को भी पढ़ाया जाना चाहिए। इनका अध्ययन दो वर्ष में समाप्त कर लिया जाना चाहिए।
7. तत्पश्चात् बच्चों को चारों वेदों सहित चारों ब्राह्मणों (ऐतरेय, शतपथ, शाम, गोपथ) को

पढ़ाया जाना चाहिए। इन सबका अध्ययन छह वर्ष की अवधि में समाप्त हो जाना चाहिए।

8. इसके पश्चात् बच्चों को चारों उपवेदों का अध्ययन आठ वर्ष के अंतर्गत करना चाहिए।
9. अंत में बच्चों को ज्योतिषशास्त्र, बीजगणित, अंकगणित, भूगोल, ज्यामिति, भूगर्भशास्त्र, खगोल विज्ञान की शिक्षा दो वर्ष की अवधि में दी जानी चाहिए।

स्वामी दयानन्द का कथन है, "इस पाठ्यक्रम को लगभग बीस वर्ष में समाप्त करने के बाद बच्चे को घर लौटना चाहिए, विवाह करना चाहिए और संसार में प्रवेश करना चाहिए।" (त्यागी व पाठक, 2010, पृ. 392)

शिक्षण विधियाँ

तत्कालीन शिक्षा प्रणाली को अनुपयुक्त घोषित कर स्वामी जी ने अनुभव किया कि अच्छी व विवेकपूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के बिना देश में वांछित सांस्कृतिक पुनर्जागरण असंभव है। अत: उन्होंने प्राचीन आदर्शों के स्तंभ पर आधारित एक नवीन शिक्षा प्रणाली को महत्व दिया, जिसके आधार पर विद्यार्थी परिश्रम द्वारा मन व शरीर को अनुशासित कर जीवन में व्यावहारिक रूप से प्रत्येक परिस्थिति का सामना कर सके। स्वामी जी बिना समझे किसी चीज़ को याद कर लेने को अच्छा सीखना नहीं मानते थे, बल्कि उसे अर्थहीन ज्ञान की संज्ञा देते थे। उनके शब्दों में, "जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता, वह जैसे वृक्ष, डाली, पत्ते, फल-फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है, वैसे (वह मनुष्य भी) भरवाह भार उठाने वाला है, जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है, वही संपूर्ण आनंद को प्राप्त हो के देहांत के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ सर्वानंद को प्राप्त होता है।" (सिंह, ओ.पी., 2004, पृ. 160-161) शिक्षण के लिए उन्होंने जिन विधियों की उपयोगिता स्वीकार की है, वह इस प्रकार है–

उपदेश अथवा व्याख्यान विधि

उपदेश का अर्थ शिक्षक की उस क्रिया से है जिसके द्वारा वह बच्चों को सत्य-असत्य, उचित-अनुचित के बारे में बताता है। कभी-कभी वह अपने कथनों के पक्ष अथवा विपक्ष में प्रमाण भी देता चलता है। स्वामी जी इस विधि को शिक्षा की प्रमुख विधि मानते थे।

स्वाध्याय विधि

स्वामी जी बच्चों के लिए गुरु आज्ञा से व स्वेच्छा से ग्रंथों का अध्ययन करना आवश्यक समझते थे। इनका मत था कि ब्रह्मचारी को पठनीय ग्रंथों का स्वयं अध्ययन करना चाहिए।

प्रत्यक्षानुभव विधि

स्वामी जी का मत था कि इंद्रियों का संबंध मन से होता है और मन का संबंध आत्मा से है। अत: हमें प्रत्यक्षानुभव द्वारा भी सीखना चाहिए, इस विधि में अवलोकन व परीक्षण, दोनों के अवसर मिलते हैं।

तर्क विधि

सभी धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तर्क के आधार पर विकसित हुए हैं। स्वामी जी इस विधि के समर्थक थे, तर्क की इस विधि में विश्लेषण और संश्लेषण, दोनों की आवश्यकता पड़ती है।

व्यावहारिक विधि

स्वामी जी इस बात को स्वीकार करते थे कि आचरण, गुरु सेवा, खेल-कूद, व्यायाम, गृहकार्य, संगीत, धनुर्विद्या, आयुर्वेद और शिल्प की शिक्षा प्रायोगिक विधि से ही दी जा सकती है। इसे वे व्यावहारिक विधि कहते थे।

विद्यालय संकल्पना

स्वामी दयानन्द विद्यालय के संबंध में वैदिक आश्रमों एवं गुरुकुलों के समर्थक थे। वे प्राचीन गुरु आश्रमों के आदर्शों के अनुरूप ही इसका विकास चाहते थे। जैसा कि उनके विचारों से स्पष्ट होता है, "द्विज अपने लड़के एवं लड़कियों का यथायोग्य संस्कार करके आचार्य कुल में भेज दें। विद्या पढ़ने का स्थान एकांत देश में होना चाहिए। कन्याओं की पाठशाला में सभी स्त्री और लड़कों की पाठशाला में सभी पुरुष रहें। विद्यालय गांव और नगर से चार कोस दूर रहे। सभी को उचित वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जाएं चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की संतान हो। उनके माता-पिता अपनी संतानों से व संतान अपने माता-पिता से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र व्यवहार कर सकें, जिससे सांसारिक चिंता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिंता रखें। जब अध्यापक भ्रमण पर जाएं तो विद्यार्थी उनके साथ जाएं, जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें।" (सिंह, ओ.पी., 2004, पृ. 159) स्वामी दयानन्द का विश्वास था कि ज्यों ही बच्चे आठ वर्ष के हो जाएँ, उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए पाठशालाओं में अवश्य भेज देना चाहिए, परंतु स्वामी जी सह-शिक्षा के घोर विरोधी थे। बालक तथा बालिकाओं की पाठशालाएँ अलग-अलग लगभग चार मील की दूरी पर स्थित होनी चाहिए।

स्वामी दयानन्द के शिक्षा संबंधी आदर्शों से प्रेरित होकर भारत के विभिन्न भागों में बालक व बालिकाओं के लिए पृथक गुरुकुलों की स्थापना की गई है। गुरुकुल आवासीय शिक्षा संस्थाएँ हैं। उनमें सह-शिक्षा का प्रचलन नहीं है। शिक्षा का माध्यम हिंदी है तथा पाठ्यक्रम में हिंदी व अंग्रेज़ी के साथ-साथ प्राय: सभी आधुनिक शास्त्रों व विज्ञान को स्थान दिया गया है। संस्कृत साहित्य एवं आर्य-संस्कृत के अध्ययन पर बल दिया जाता है।

शिक्षक संकल्पना

स्वामी दयानन्द का मानना है कि शिक्षक बच्चों को संध्योपासना, यज्ञ, प्राणायाम, नैतिक कार्य आदि की शिक्षा दें। ब्रह्मचारी, संन्यासी, सर्वविद्या विभूषित, सर्व कौशलपूर्ण, शिष्ट, सभ्य एवं पूर्ण दक्ष ये सभी गुण आचार्य में होने आवश्यक हैं, तभी वह अपने दायित्वों को पूर्ण कर सकता है। स्वामी दयानन्द ने शिक्षकों के चयन में विशेष सावधानी रखने का सुझाव दिया है कि शिक्षक योग्य तथा सर्वगुण सम्पन्न होने चाहिए। शिक्षा के विविध लक्ष्यों की

प्राप्ति में सफ़लता व असफ़लता उसके अध्यापक वर्ग पर निर्भर करती है। स्वामी दयानन्द कहते हैं कि अध्यापक को वेद का ज्ञाता होना चाहिए, जिससे वह अपने छात्रों में भी उच्च आदर्श की भावना विकसित कर सके। शिक्षक को पवित्र तथा निष्काम भाव से शिक्षण कार्य करने वाला होना चाहिए। उसे अपने शिष्यों की प्रवृत्तियों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। शिक्षक को ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्व का होना चाहिए जो शिष्यों को आकर्षित कर सके तथा उसका स्वभाव मृदु होना चाहिए। शिक्षक का शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम होना चाहिए, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है।

स्वामी जी का मानना था कि शिक्षक का चरित्र अत्यंत उच्चकोटि का होना चाहिए, क्योंकि जब तक शिक्षक का स्तर पूर्ण रूप से नैतिक व चारित्रिक गुणों से संपन्न नहीं होगा, वह अपने शिक्षार्थियों की दृष्टि में आदर व सम्मान का पात्र नहीं बन सकता है। इसलिए समाज में आदर व सम्मान के पद पाने के लिए उसे उच्च नैतिक आदर्शों को अपने अंतर्गत प्रतिष्ठित करना होगा। शिक्षक को निष्पक्ष रूप से आचरण करने वाला होना चाहिए। चित्त की शुद्धता के बिना वह बच्चों में आध्यात्मिक शक्ति का विकास नहीं कर सकता। स्वामी जी की धारणानुकूल शिष्य व गुरु में पिता-पुत्र का संबंध होना चाहिए तथा वातावरण प्रेम व सहानुभूतिपूर्ण हो।

विद्यार्थी संकल्पना

स्वामी दयानन्द विद्यार्थियों से अपेक्षा करते थे कि वे संयमित व ब्रह्मचारी होकर पच्चीस वर्ष तक आचार्यकुल में अध्ययन करें तथा अपने अंदर उन सभी नैतिक व आध्यात्मिक गुणों का समावेश करें जो वैदिक आश्रमों के विद्यार्थियों के थे। स्वामी जी कहते हैं कि, "आचार्य अपने शिष्यों व शिष्याओं को इस प्रकार उपदेश करें कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचार कर, प्रमादरहित होके पढ़, पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण और आचार्य के लिए प्रिय धन देकर विवाह करके संतानोत्पत्ति कर, प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़। प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर, प्रमाद से आरोग्य व चतुराई को मत छोड़, प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़। देव विद्वान और माता-पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर। जैसे विद्वान का सत्कार कर, उसी प्रकार माता-पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर। जो आनन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं, उन सत्य भाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्या भाषणादि कभी मत कर।" (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समु., 2002, पृ. 35)

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार विद्यार्थी का जीवन राग-द्वेष से रहित होना चाहिए। उसका सांसारिक चीज़ों के प्रति किसी भी प्रकार का आकर्षण न हो, न ही बुराइयों में फंसे और न बुराइयां देखें। यदि ऐसी स्थिति हो, या तो उसे दूर करने का प्रयास करें या वहाँ से हट जाएँ। भोजन सात्विक एवं सादा हो, जिससे ब्रह्मचर्य सुरक्षित रह सके। सत्यार्थ प्रकाश ने समुल्लास तृतीय में विद्यार्थियों के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए कहा है, "ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गंध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का संग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा, अंगों का मर्दन, आंखों में अंजन, जूते और छत्र का

धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष और नाच-गान, बाजा बजाना, द्यूत, किसी की निंदा, मिथ्या भाषण, स्त्रियों का दर्शन, आश्रय, दूसरे की हानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें।'' (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समु., 2002, पृ. 35)

अनुशासन संकल्पना

स्वामी जी प्राचीन भारतीय परंपरा के समर्थक थे। उनके अनुसार विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहिए। ब्रह्मचर्य जीवन का अर्थ इंद्रियों पर नियंत्रण और मन, वचन तथा कर्म से शुद्ध होना है। शिष्य इस प्रकार का आचरण तभी करेंगे, जब गुरु उनके सामने उचित आचरण करें। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी जी अनुशासन के महत्व को स्वीकार करते थे और गुरु व शिष्य, दोनों से अनुशासन में रहने की अपेक्षा करते थे। जो बालक संयमित जीवन व्यतीत न करें, उन्हें दंड द्वारा उचित मार्ग पर लाना चाहिए। स्वामी जी कठोर शारीरिक व मानसिक अनुशासन के पक्ष में थे। उनके विचार से बिना कठोर दंड के भय के मनुष्य इंद्रिय निग्रह नहीं करते व नियमों का पालन नहीं करते। उन्होंने लिखा है, "जो माता-पिता, आचार्य, संतान एवं शिष्यों का ताड़न करते हैं, वे मानो अपनी संतानों एवं शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो संतानों एवं शिष्यों का लाड़न करते हैं, वे अपने संतानों और शिष्यों को विष पिलाकर नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। लाड़न से संतान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़न से गुणयुक्त होते हैं।" (पांडेय तथा कपूर, 1998, पृ. 175)

स्त्री शिक्षा संकल्पना

स्वामी दयानन्द स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वे कहते थे कि वेद स्त्री शिक्षा का निषेध कहीं नहीं करता, उन्हें वेदाध्ययन का अधिकार है। वे उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचारी रहकर पच्चीस वर्ष तक अध्ययन करें। उनके अनुसार, "राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का और लड़की किसी के घर में न रहें, किन्तु वे आचार्यकुल में रहें, जब तक कि समावर्तन का समय न आवे, तब तक विवाह न होने पावे।" (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समु., 2002, पृ. 51) स्वामी जी सह-शिक्षा के विरोधी थे, इसलिए लड़कियों के लिए पृथक विद्यालय की स्थापना चाहते थे, जहाँ अध्यापक, भृत्य तथा अन्य कर्मचारी भी पुरुष न हों, केवल स्त्रियाँ ही हों। स्वामी जी ने पर्दा प्रथा जैसी मध्ययुगीन परंपरा का विरोध किया और कहा कि, "यह बड़े अन्याय की बात है कि स्त्री घर में कैदी के समान रहे और पुरुष स्वतंत्र रहे। क्या स्त्रियों का चित्त शुद्ध वायु, देश भ्रमण तथा सृष्टि के अनेक पदार्थों को नहीं देखना चाहता होगा।" (सिंह, ओ.पी., 2004, पृ. 163) स्वामी दयानन्द स्त्रियों को वेद पाठ से रोकने का विरोध करते थे तथा अकाट्य तर्कों से इस बात की पुष्टि करते थे कि वैदिक काल में स्त्रियों को वेद पाठ से कहीं भी नहीं रोका गया है, उनके अनुसार, ''जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे कन्या ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती

होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान और पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को प्राप्त होवे। इसलिए स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिए।" (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समु., 2002, पृ. 50)

धार्मिक शिक्षा

स्वामी जी ने सभी के लिए धर्म धारण करना श्रेयस्कर माना, क्योंकि धर्म सत्याचरण पर चलने के लिए अंत: प्रेरणा देता है, उन्होंने 'वेदादि भाष्य भूमिका' में इसके महत्व की चर्चा की है—"सब जगत की प्रतिष्ठा धर्म है, धर्मात्मा का ही लोक में विश्वास होता है, धर्म से ही मनुष्य लोग पापों को छुड़ा देते हैं, जितने उत्तम कार्य हैं वे धर्म से ही किए जाते हैं। इसलिए उत्तम धर्म धारण करना चाहिए।" (सिंह, ओ.पी., 2004, पृ. 163) धर्म संबंधी उनकी मान्यता वेदों, सूत्रों और महात्माओं के विश्वासों के ज्ञान पर आधारित थी। उनके अनुसार, परिस्थिति में पक्षपात रहित न्याय, मन, वचन, कर्म से सत्याचरण और ईश्वराज्ञा अर्थात् वेद विरुद्ध पक्षपातपूर्ण, अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादि कर्म अधर्म हैं। वे सांप्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे तथा सभी धर्मों को मिलाने और उनमें समन्वय स्थापित करने पर बल देते थे।

राष्ट्रीय शिक्षा

स्वामी दयानन्द की दूर दृष्टि राष्ट्रीय विकास की महत्ता को परख चुकी थी। उन्होंने सुप्त राष्ट्र में एक नवीन चेतना का संचार करने का प्रयास किया। अपने प्राचीन गौरव को पुन: नवजीवन देकर राष्ट्र की महिमा को बढ़ाना चाहा। अत: उन्होंने शिक्षा को भी राष्ट्रीय संस्कृति, आदर्श व आवश्यकताओं के अनुकूल होने पर बल दिया। वे मानते थे कि शिक्षा का अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है, जब इसे राष्ट्रीय स्वरूप में ढाल दिया जाए। राष्ट्रीय एकता देश की प्रथम आवश्यकता है, अत: देश को सुदृढ़ व प्रगतिशील बनाने हेतु सुदृढ़ राष्ट्रीयता का विकास करना होगा, जहाँ पर कोई भी ऐसा कार्य न हो जिससे राष्ट्रीय एकता कुंठित हो। इस प्रकार, शिक्षा ही वह माध्यम है जो राष्ट्रीयता की भावना मानव तक पहुँचा सकने में समर्थ है।

उपसंहार

स्वामी दयानन्द सरस्वती केवल धर्म प्रचारक और समाज सुधारक ही नहीं थे, अपितु राष्ट्रीय जागरण के प्रणेता भी थे। शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वामी जी का बड़ा योगदान है। वे भारतीय शिक्षा को भारतीय बनाने, अंग्रेज़ी के स्थान पर मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने और अंग्रेज़ी पद्धति पर चलने वाले विद्यालयों के स्थान पर भारतीय पद्धति पर चलने वाले गुरुकुलों और दयानन्द वैदिक विद्यालयों की स्थापना करने के लिए सदैव स्मरण रहेंगे। जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा, धार्मिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा का बिगुल भी इस देश में सबसे पहले स्वामी दयानन्द ने ही बजाया था। इनके द्वारा स्थापित आर्य समाज संस्था आज भी शिक्षा के प्रचार व प्रसार कार्य में रत है और देश में अनेक शिक्षण संस्थाएँ चला रही है। स्वामी जी ने अपनी शिक्षा योजना में प्राचीन एवं आधुनिक

भारतीय आदर्शों का सुंदर समन्वय किया है, शिक्षा को अंधविश्वासों, आर्थिक विषमताओं, धार्मिक संकीर्णताओं एवं जाति-पाति के बंधनों से पृथक रखकर सब वर्णों के पुरुषों व स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार प्रदान किया है। स्वामी जी के महान कार्यों की सराहना करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है—

"स्वामी दयानन्द आधुनिक भारत के सबसे महान पथ निर्माता थे, जिन्होंने जातियों, उपजातियों, छुआछूत आदि के भयंकर जंगलों को चीरकर हमारे देश के ह्रास-काल में ईश्वर भक्ति और मानव सेवा का सहज मार्ग प्रस्तुत किया। उन्होंने पैनी दृष्टि तथा दृढ़ संकल्प के साथ लोगों में आत्म सम्मान और मानसिक चेतना को उद्‌बुद्ध किया।" (त्यागी एवं पाठक, 2010, पृ. 388)

संदर्भ

गुप्त, लक्ष्मीनारायण और मदनमोहन. 2005. *महान भारतीय शिक्षाशास्त्री*. कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 120–139.

ग्रोवर, इन्द्रा. 2001. *संसार के महान शिक्षाशास्त्री*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. 243–248.

त्यागी, जी. एस. डी. और पी.डी. पाठक. 2010. *शिक्षा के सामान्य सिद्धांत*. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा. पृ. 387–396.

पांडेय, रामशकल. 1999. *विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री*. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा. पृ. 190–206.

पांडेय, रामशकल और बीना कपूर. 1998. *शिक्षा के दार्शनिक आधार*. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा. पृ. 171–177.

लाल, रमन बिहारी और गजेन्द्र सिंह तोमर. 2008. *विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिंतक*. आर. लाल बुक डिपो, मेरठ. पृ. 269–286.

शर्मा, मणि. 2005. *समकालीन भारतीय शिक्षा-दर्शन*. एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा. पृ. 143–148.

सक्सेना, एन.आर. स्वरूप और के.पी. पांडेय. 2004. *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. आर. लाल बुक डिपो, मेरठ. पृ. 335–341.

सरस्वती, महर्षि दयानन्द. 2002. *सत्यार्थ प्रकाश*. आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली. पृ.21–51.

सिंह, ओ. पी. 2004. *शिक्षा-दर्शन एवं शिक्षाशास्त्री*. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद. पृ. 153–166.